राकेश सिंह

'बखरी' के लिए

सारा गाँव जानता है
मेरी माँ अब नहीं रहीं
पिता अनमने से
छोड़ अपनी पीठ (गद्दी)
शहरी कुहासे में समा गए
'बखरी' अभी मौजूद
उसकी 'भीत' पर
कंडे थापतीं औरतें
चेचक के दाग-सी,
निडर निश्चिंत हो
फलाने (उनकी) अम्मा (माँ) नहीं अगोरने
के लिए
ढहती 'बखरी' का एक-एक घोरिया
कला का नमूना नहीं
रात्रि के खाने का स्वाद बनता
पुरातन काल वाले बुड्ढों से
छिपकर 'कलिया' (मीट) बनाते
लौंडों को सर्व-सुलभ ईंधन है,
कड़ी दर कड़ी उखाड़ते लोग
फलाने की बखरी कहते हुए
जीवित रखी है अस्तित्व
काई लगी भीत से
ईंट उखाड़ते लोग
जैसे परत-परत इतिहास
उकेड़ रहे हों।
बस्ती के आस-पास के घरों में
'नहान घर' में खाड़ी ईंट चिखाती
'बखरी' के लिए धीरे-धीरे शांत हो जाती
जब जवान औरतें नहाते समय
पूरे घर की खुसुर-फुसुर
टोना-टोटका, भागना-पराना बतियाती
तब ईंटों के कान खड़े हो जाते
अच्छा था वहीं
छिपकली, झींगुर, मेढकों के बीच
आदमियत से दूर
बखरी के सामने
कुएँ की जगत में पत्थर
टूटकर झड़ रहे जैसे
किनारा कर रहे हों
घास और काई के आतंक से
डरकर।

□

सन्नाटे के साथ-साथ

मेरे घर के कोने-कोने में
सुनसान बसता है
वह रह-रहकर
तक्षक-सा डसता है
उसके अट्टहास से
उम्मीदें चुराता हुआ मैं
घूमता हूँ (एक लंबा छुरा लेकर
जिबह करने के लिए)
लेकिन यह
अख्तियार करता कई शक्लें
दिन रात के साथ
रात के अँधेरे से
सुर में सुर मिलाए
बाहर-भीतर सर्वत्र भर जाए
दिन के उजाले में
सिकुड़कर बैठ जाता है
बंद कमरे के अँधेरे में
जहाँ से कभी जीवन संगीत
सुना था मैंने
मौसम से भी इसने
अच्छा रिश्ता बनाया
सर्द मौसम में कुहासे
तपती धूप में रुआँसे
मेरे मर्म को बरसात की
तरह धो डालता
कभी सोचता हूँ
लाकर ढेर सा शोर
मुँहतोड़ जवाब दूँ
तोड़ दूँ संपूर्ण अक्षर विन्यास
छुरे की मूठ पकड़े मेरे हाथ
साथ नहीं दे रहे
सामर्थ्य नहीं है उसके जिबह की
मेरी आँखों का
मन और मस्तिष्क
सबका अब वह साथी हो गया
इस प्रवेश में मेरे अंदर
घर कर लिया
अब मैं चाहता हूँ यह कहीं
दूर न जाए
सन्नाटा मुझसे रूठ न जाए
क्योंकि इस सुनसान ने
मुझे दृष्टि दी है—
परखने एवं महसूस करने की।

□

पुलिस अधीक्षक,
कानपुर